शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 9
Issue 1
15 January, 2018

छत्तीसगढ़ के धुरवा जनजाति में दुर्लभ लोकनृत्य

बीज शब्द :

लोकनृत्य, शिकार नृत्य, मेंढकी नृत्य, धुरवा जनजाति।

नृत्य मनुष्य की एक शारीरिक, अर्थपूर्ण एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति है। बस्तर की जनजातीय जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों, मूल्यों, कर्तव्यों एवं ज्ञान को हम इन नृत्यों में समाहित पाते हैं। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य बस्तर जिले के धुरवा जनजाति में विभिन्न अवसरों पर प्रस्तुत किए जाने वाले लोकनृत्यों का संग्रहण कर गुणात्मक एवं विवरणात्मक अधययन करना है। प्राथमिक आँकड़ो के संकलन हेतु भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर जिले के चीतापुर गांव में निवासरत धुरवा जनजाति को चुना गया है। धुरवा जनजाति में प्रचलित विभिन्न पारम्परिक लोक नृत्यों (शिकार, मेंढकी नृत्य) का वीडियों रिकार्डिग, फोटोग्राफी और साक्षात्कार किया गया। चीतापुर ग्राम के धुरवा जनजाति में मेंढ़की नृत्य, खेल नृत्य का एक प्रकार है जिसमें नर्तक जमीन पर मेंढ़क की प्रकृति के अनुसार बैठकर नृत्य करता है। धुरवा जनजाति में हास्य, उमंग, उत्साह से भरपुर शिकार (पारद) नृत्य एक प्रसिद्व लोकनृत्य है जिसमें पुरूष नर्तक ही भाग लेते हैं।

*****

डॉ. योगेन्द्र मोतीवाला
सहा. प्राध्यापक, हिन्दी, शास. दंतेश्वरी
स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)

डॉ. श्यामा चरण ओग्रे
सहा. प्राध्यापक, मानवविज्ञान, शास. दंतेश्वरी
स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)
E-mail: shyamacharanogre@gmail.com

छत्तीसगढ़ के धुरवा जनजाति में दुर्लभ लोकनृत्य

नृत्य (Dance) मनुष्य की एक ऐसी शारीरिक सांस्कृतिक, सुन्दर, अर्थपूर्ण एवं भावपूर्ण अभिव्यक्ति हैं जिसे व्यक्ति के शारीरिक अंगो को विभिन्न गतियों या मुद्राओं, साज, पोशाकों द्वारा किसी ताल और लय के अनुरूप प्रकट किया जाता है। इन मुद्राओं या गतियों को देखकर दर्शक किसी निश्चित भाव भंगिमाओं को समझता है। यह भाव क्रोध का, उल्लास का, दु:ख का हो सकता है। शरीर की इन गतियों में संगीत की भाँति ताल (Rhythm) एवं लय का प्रस्तुतिकरण केवल शारीरिक मुद्रा और गति अथवा वाद्ययन्त्रो जैसे ढोल, तबला, मृदंग, बांसुरी आदि द्वारा या दोनो के मिश्रण द्वारा किया जाता है। इन नृत्यों को प्रत्येक अवसर, पर्व, विवाह, अथवा सामाजिक-सांस्कृतिक समारोह में प्रस्तुत किया जाता है जिसमें प्रत्येक उम्र, लिंग के सदस्यभाग लेते हैं।

मेरियम वेबस्टर शब्दकोष के अनुसार - *'नृत्य एक ऐसी संकेत या क्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति संगीत के अनुरूप लयबद्ध तरीके से अपने शरीर के अगों को गति प्रदान करता है। यह संचार की एक कलात्मक, मौखिक, भावात्मक अभिव्यक्ति है।*

जनजातियों में नृत्य का अतिविशिष्ट महत्व है और यह नृत्य उनके जीवन के प्रत्येक अवस्थाओ से जुड़ा हुआ है। उनके जीवन का ऐसा कोई उत्सव नही होता, जिसमें वे नृत्य को शामिल नही करते चाहे जन्म हो या मुत्यु, विवाह, नामकरण, पौधारोपण, ख्रषि, फसल कटाई, शिकार, भोज, या कोई अन्य अवस्था, प्रत्येक अवसर पर अलग-अलग प्रकार के नृत्य किये जाते हैं। एल.पी. विद्यार्थी और बिनय राय (1979) ने लिखा है कि 'जनजातियों के लोक गीत, संगीत एव नृत्य एक मिश्रित सम्पूर्ण कला है जो उनकी संस्कृति का प्रभावी लक्षण है।' भारत जैसे विश्व के समस्त देशो में तथा प्रत्येक कालो में नृत्य का चलन रहा है। बस्तर की आदिवासी संस्कृति में नृत्य का विशिष्ट महत्व है। जनजातीय जीवन से जुड़े विभिन्न पक्षों, मूल्यों, कर्तव्यों एवं ज्ञान को हम इन नृत्यो में समाहित पाते हैं। नृत्य-गीतों के माध्यम से अपनी लोक संस्कृति के हस्तानान्तरण परम्परागत रूप से पीढ़ी दर-पीढ़ी होते आया है। नृत्य एवं गीत न केवल मनोरंजन के माध्यम है बल्कि यह जनजातीय संस्कृति का इतना महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे इनके जीवन से अलग करना असम्भव है और इन नृत्य गीतो के माध्यम से विभिन्न आन्तरिक सांस्कृतिक मूल्य पोषित हो रहे है, चाहे यह उनके आर्थिक जीवन के मूल्य हो या धार्मिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत मूल्य हो। बस्तर के आदिवासी समाज इन्ही सांस्कृतिक विशिष्टताओं के कारण विश्व-विख्यात है।

बस्तर जिले में मुख्यत: हलबा, भतरा, मुरिया, माड़िया, धुरवा एवं दोरला जनजाति निवास करती है। इनमें विभिन्न त्यौहार या महोत्सव जैसे बस्तर दशहरा, चईत परब, अमूंस, गोन्चा, गेडी, आमाखानी, दियारी, छेरछेरा, जात्रा आदि प्रचलित है जिसमें विभिन्न प्रकार के नृत्यों को प्रस्तुत किया जाता है। इन नृत्यो में डन्डारी नृत्य, गौर सिंग नृत्य, ककसाड़ नृत्य, गेड़ी नृत्य सर्वाधिक प्रचलित है। शिकार नृत्य में जानवर का मुखौटा पहनकर, उसे मारने, फँसाने आदि की गतियों और मुद्राओं में नृत्य किया जाता है। इन नृत्यो को भिन्न-भिन्न अवसरो पर अलग-अलग नामो से जाना जाता है। जैसे- मांदरी नृत्य, शैला नृत्य, करमा नृत्य, सरहुल नृत्य, माओपाटा-घोटुल पाटा नृत्य आदि।

इन नृत्यों में प्रत्येक लिंग, उम्र, जात-पात, समूह आदि के लोग समाहित होते हैं, जो सामाजिक साम्प्रदायिक सद्भावना को प्रकट करता है। यहाँ पर अनेकता में एकता का गुण दृष्टिगोचर होता है। जनजातियों में प्रचलित लोक नृत्यों में गांव के निवासी ख्रत्रिम शिष्टता, बनावटी मर्यादा के मुखौटे को भूलकर हार्दिक आत्मीयता के साथ सहभागिता प्रकट करते हैं। ये नृत्य उनके लिए उमंग, हंसी-ठिठोली, मस्ती-मजाक, सामाजिक, सांस्ख्रतिक सीख, धार्मिक-राजनैतिक शिक्षा का साधन होते हैं। इन नृत्यों में रंगमंच की आवश्यकता नही होती। प्रकृति के उत्मुक्त वातावरण में, खुले मैदान में, गांव के गली में संचालित होता है। सामान्य अथवा विशिष्ट वेशभूषा, साज-सज्जा युक्त नर्तक अत्यंत आकर्षक एवं मनोरम दिखते हैं। इन नृत्यों में समय का कोई बन्धन नही होता, कई नृत्य और त्यौहार तो कई दिन तक संचालित होते रहते हैं। नृत्यों को मनमोहक और मनोरंजक बनाने हेतु नृत्यों में विभिन्न वाद्ययन्त्रो एवं लोक गीतो का प्रयोग किया जाता है। इसके परिण ाम स्वरूप नृत्य को ताल एवं लय प्राप्त होता है। इन लोक गीतो के माध्यम से मनुष्य अपनी भावनाओं जैसे- प्रेम, विरह, मिलन, आनन्द, क्रोध, उमंग आदि को अभिव्यक्त करता है।

पूर्व में किये गये कार्यो का अध्ययन

जनजातीय लोकनृत्यों में मानवशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों की अभिरूचि प्रारम्भ से ही रही है। जब भी मानव समुदाय विशेष सामाजिक-सांस्ख्रतिक परिख्रश्य का उल्लेख हुआ है तब उनकी लोक संस्ख्रति में हम नृत्य एवं गीत-संगीत का समावेश पाते हैं। वैश्विक दृष्टिकोण से मानव शास्त्री फ्रांज बोआज ने 1897 में 'क्वाक्यूटल इण्डियन पर, वेरियर एल्विन (1947) ने छत्तीसगढ़

के मुरिया घोटुल के नृत्य एवं गीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अध्ययन किये हैं। छत्तीसगढ़ में निवासरत आदिवासी समूह अपनी विलक्षण सांस्ख्रतिक धरोहर के कारण अध्ययनकर्ताओं के विशेष आकर्षण का क्षेत्र रहा है। सर्वश्री ग्रिगसन (1938) महोदय ने पहाड़ी माड़िया और बाइसन हार्न माड़िया में प्रमुख नृत्य ककसार, विवाह नृत्य एवं बाइसन हार्न माड़िया नृत्य करने के तरीके, विधि, एवं उसके विभिन्न पक्षों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है।

सन् 1947 में वेरियर एल्विन ने छत्तीसगढ़ के बस्तर में निवासरत मुरिया जनजाति में पाये जाने वाले युवागृह घोटुल में होने वाले विभिन्न नृत्य, गीत, नृत्यमुद्राओं, खेल तथा अन्य सामाजिक-सांस्ख्रतिक क्रियाकलापों का सुव्यवस्थित एवं वृहद अध्ययन किया।

कैपलर (1978) में नृत्य को मानव वैज्ञानिक परिदृश्य में समझाने का प्रयास किया। उन्होने अपने लेख में 1960 के जी.पी. कुरथ के अध्ययन को नृत्य के इथनोग्राफिक अध्ययन का प्रारंभ माना। कुरथ ने नृत्य के मानव वैज्ञानिक प्रक्रिया को क्षेत्र कार्य अध्ययन, प्रयोगशाला अध्ययन, स्थानीय एवं क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञ व्यक्तियों से पूछताछ, ग्राफिक प्रस्तुतिकरण, साहित्यिक विश्लेषण, पूर्ण नृत्य में प्रारंभ, स्टेप्स, संगीत और शब्द निर्माण करना तथा अंत में निष्कर्ष, सिद्धान्त एवं तुलना को सम्मिलित किया।

लाला जगदलपुरी (1994) ने अपनी रचना 'बस्तर इतिहास एवं संस्कृति' में बस्तर की जनजातियों का परिचय देते हुए उनके संस्कृति का अभिन्न अंग नृत्य एवं संगीत की व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होने स्थानीय बोलियों हल्बी, भतरी में लोक गीतों को, नृत्य दल की विशेषताएं, आभूषण-पहनावा, वाद्ययंत्र, विशेषकर दण्डामी माड़िया नर्तक, करसाड़ नर्तक, डंडारी नर्तक, गेड़ी नर्तक आदि का विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक वर्णन किया है।

अध्ययन का उद्देश्य एवं महत्व

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य बस्तर जिले के धुरूवा जनजाति में विभिन्न अवसरों पर प्रस्तुत किए जाने वाले लोकनृत्य का संग्रहण कर गुणात्मक एवं विवरणात्मक अध्ययन करना है। यह अध्ययन बस्तर के धुरूवा जनजाति में उपलब्ध लोकनृत्य को प्रस्तुत करने के साथ ही बस्तर की धुरूवा जनजाति के संस्कृति के एक महत्वपूर्ण पहलू पर अध्ययनकर्ताओं, पाठको का ध्यान आकृष्ट कर भविष्य के अध्ययनकर्ताओं को इस क्षेत्र में शोधकार्य करने के लिए प्रेरणा प्रदान करेगा।

अध्ययन क्षेत्र, समुदाय एवं शोध प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन कार्य में आकड़ो के संकलन हेतु भारत के छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर जिले के दरभा तहसील के चीतापुर गांव में निवासरत धुरवा जनजाति को चुना गया है। धुरवा जनजाति में प्रचलित विभिन्न पारम्परिक लोक नृत्य का विडियों रिकार्डिग, फोटोग्राफी और साक्षात्कार किया गया।

बस्तर क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य, खनिज संसाधन, वन तथा जनजातीय संस्कृति अद्वितीय है। बस्तर जिला पूर्व में दण्डकारण्य क्षेत्र के रूप में जाना जाता था, जो ऐतिहासिक काल में बस्तर रियासत के अंतर्गत माना जाता था। देश की स्वतंत्रता के उपरांत इसे जिले एवं संभाग का दर्जा दिया गया। लगभग 4029.98 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैले बस्तर जिले के पूर्व की ओर उडीसा राज्य तथा शेष दिशाओं में कोण्डागाँव, दंतेवाड़ा, सुकमा, बीजापुर जिला स्थित हैं। जनगणना 2011 के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 14,11,644 है, कोण्डागाँव शामिल।(चित्र क्र. 01)

धुरवा जनजाति

बस्तर जिले में 70 प्रतिशत से अधिक जनंसख्या जनजातियों की हैं। इसमें गोण्ड, मुरिया, माड़िया, धुरवा, भतरा, गदबा, हल्बा प्रमुख जनजातियाँ है। धुरवा जनजाति के सदस्यों की वीरता एवं साहस के कारण तात्कालीन शासन के राजमहलों में इनकी ड्यूटी लगी रहती थी। इनका प्रमुख निवास चीतापुर, जगदलपुर तहसील सुकमा, दरभा, छिंदगढ़ विकासखण्ड में है। इनका प्रमुख गोत्र नाग, बघेल और कच्छिम है। इनकी प्रमुख बोली धुरवी या परजी जो द्रविड़ भाषा परिवार की सदस्य है। गुण्डाधुर व डेबरीधुर नामक इसी जनजाति के नेताओं से शत्रु भी कांपते थे। इसके सदस्यों का कद प्राय: ऊँचा होता है। इनके देवी-देवताओं में भरवा डोकरा व भंडारिन डोकरी प्रमुख है। इनके प्रमुख उत्सवों में लक्ष्मी जगार व गुरगाल पूजा अधिक प्रचलित है जो रात भर लगातार एक माह तक चलने वाला उत्सव है।(रसल एवं हीरालाल, 1916)

प्रस्तुत अध्ययन में बस्तर जिले के धुरवा जनजाति के नर्तकों एवं नर्तक दलो से चर्चा एवं प्रस्तुतिकरण का अवलोकन उपरांत विशिष्टताओं को प्रकट किया गया है। धुरवा जनजाति प्रचलित लोकनृत्य, उनके वादक, उनकी प्राचीनता एवं नृत्य की निरंतरता आदि का अध्ययन किया गया है। प्राथमिकु ोत के अंतर्गत सीधे नर्तक, नर्तक दलो की नृत्य प्रस्तुति एवं साक्षात्कार आदि को शामिल किया गया है। द्वितीयक तथ्यों का संकलन महत्वपूर्ण ग्रंथों, शोध पत्र-पत्रिकाओं, शोध ग्रंथो से किया गया है।

परिणाम एवं विश्लेषण

जनजातीय समाज में नृत्य, गीत, खेल, लोक कथाओं या पहेलियों को सिर्फ मनोरंजन तक सीमित नही माना जा सकता, बल्कि इनका महत्व इससे कहीं ज्यादा गहरा होता है। वैसे तो नृत्य की परंपरा आदिम युग से ही चली आ रही है, जब से आदिम मानव ने अपने भाव प्रकट करने के लिए अंग संचालन या मुद्राओं का उपयोग करना सीखा। नृत्य की एक विशेषता है मोहक वेशभूषा और अंलकरण, अंगों की सजावट। इसलिए नृत्य प्रारंभ से ही कला के आकर्षण का केंद्र रहे हैं। बस्तर जिले के धुरवा जनजाति में प्रचलित लोकनृत्यों का वर्णन एवं विश्लेषण निम्नलिखित है :-

मेंढ़की नृत्य :

जनजातीय वर्ग में क्रीड़ा नृत्य को गोंडी बोली के शब्द 'कर्सना एन्दाना' नाम से जाना जाता है। जनजातीय वर्ग में नृत्य के रूप में खेल की भी परंपरा मिलती है। बस्तर के मुरिया बाहुल्य क्षेत्र में खेल नृत्य के अनेक रूप देखने मिलते हैं। चीतापुर ग्राम के धुरवा जनजाति में यह नृत्य मेंढ़की नृत्य के नाम से जाना जाता है। यह नृत्य की कठिन मुद्रा हैं, जिसमें नर्तक जमीन पर मेंढ़क की प्रकृति के अनुसार बैठता हैं। इसमें सबसे पहले नर्तको की आधी पंक्ति जमीन पर उकडूं (आधा खड़े आधा बैठने की अवस्था) हो जाती है, अपने दोनो पांवो को दोनो तरफ फैला कर दांए हाथ को दायें पांव के घुटने में पीछे ले जाकर, और बांयें हाथ को बांयें पैर के पीछे घुटने को छूते हुए पांवों को फँसा कर जमीन को हथेलियों से दबाकर रखती है। इस तरह पांव का तल भाग और हथेलियाँ एक दूसरे के बिल्कुल नजदीक आकर जमीन से टिक जाती है। (चित्र क्र. 02) मेंढ़क की इस प्रख्रति का प्रतिरूप प्रस्तुत करना ही सबसे अधिक कष्ट साध्य प्रतीत होता है। नर्तको का दूसरा आधा समूह इस स्थिति को संभालने और सहयोग करने खड़ा रहता है। अत्यंत कठिन नृत्य होने के कारण इसे लंबे समय तक नही किया जाता, किन्तु नर्तको एवं दर्शको में कौतुहल पूर्ण उत्साह पैदा करने में यह सबसे ज्यादा सफल रहता है। अपने अधो वस्त्रों को या मुद्रा को समरूप करने के लिए नर्तक जागरूक रहते है। इस बीच गाँव के उपस्थित दर्शक चर्चाओं और संबोधनों के द्वारा उत्साहवर्धन करते रहते है। सारी स्थिति अनुकूल होने के पश्चात शेष नर्तक दल उसी तरह मेंढ़क की आकृति बनाते हुये पहली पंक्ति के बगल में समानांतर पंक्ति बना लेते हैं। अब बांसुरी की धुन बजनी शुरू हो जाती है।

ढोल बजने लगते हैं और मेंढ़क की आकृति वाली दोनो पंक्तियाँ मेंढ़क की तरह कूदने लगती है। वे सभी एक दूसरे के चेहरे के सामने आ जाते है और कभी सामने की ओर आ जाते है। (चित्र क्र. 03) दूसरे ही पल कूदते हुए अपने दायी और कभी बायी ओर उछल जाते है। बाँये-दायें और पीछे की ओर कूदते हुए 360 डिग्री का गोल घेरा कूदते हुए पूरा कर लेते हैं। बांसुरी, ढोल और टमक के साथ नर्तको के दोनो पांवो में बंधे घुंघरू लय और ताल के साथ मिलकर बजते रहते हैं। (चित्र क्र. 04, 05, 06) नृत्य के बाद पुरूष गायक गीत गाने लगते है जो खुले वातावरण की आवाजो के कारण अस्पष्ट सुनाई पड़ता है।

इसकी विशेषता यह है कि नर्तक पूरे नृत्य में ह्यस परिहास के साथ स्थिति का आनंद उठाते है। बस्तर की अन्य जनजातियों में अन्य खेल गीतों का विवरण तो मिलता है किन्तु इस मेंढ़की नृत्य का विवरण नही मिलता। अतः कहा जा सकता है कि यह परंपरागत नृत्य अपने आनंद और विशिष्ट स्थिति में किए जाने के कारण ही इस क्षेत्र में अब तक प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके लिए गाँव के कोटवार, नर्तक, वादक और सभी गाँव वासी का प्रोत्साहन ही प्रमुख है। नृत्य की कठिन शारीरिक मुद्रा का अभ्यास न होने के कारण एक-दो नर्तक थोड़ी देर के बाद नृत्य से हट जाते है किन्तु शेष नर्तक शारीरिक क्षमता, कुशलता और संतुलन के साथ अब गोला बनाकर नृत्य करने लगते है। दर्शक इस अद्भूत नृत्य को देखकर आश्चर्य में पड़ सकते हैं।

नृत्य की एक अन्य तरह के खेल नृत्य का यहाँ पर प्रचलन मिलता है। इस नृत्य में नर्तक रस्सी या धागे के बण्डल की तरह खुलते जाते हैं। (चित्र क्र. 07) सारे एक छोटे से स्थान में सिमट जाते हैं। सभी के शरीर एक दूसरे से चिपके दिखते हैं। नर्तक के दोनो हाथ अपने दायें और बायें दूसरे नर्तक की कलाइयों को मजबूती से खींचे हुए रहते हैं। एक दूसरे से मजबूती से बंधे इंसानी गट्ठे का एक सिरा घेरे से अलग एक दूसरे का हाथ पकड़े सामने सिर किए हुए पीछे की तरफ चलता या लय के अनुसार तेज चलता जाता है, उसके साथ के एक-दो नर्तक भी पीछे की दिशा में उल्टा चलने लगते हैं। इससे मनुष्य रूपी बण्डल खुलते हुए लगने लगते है लेकिन नृत्य के नर्तकों का बंधन इस तरह बदलता रहता है कि वे खुलते हुए दिखने के बावजूद दो या तीन चक्कर लगाने के बाद भी खुलकर एक लाइन में नही आते। यही इस नृत्य शैली की विशेषता लगती है। गोल घेरे में बंधे नर्तक खुलकर अलग-अलग नही होते और बीच में ही एक सिरे से पकड़ी कुल्हाड़ी को हवा में उछालते बांसुरी एवं ढोल के साथ नाचते रहते है। गायकों का लोकगीत ही इसमें लय निर्धारित

करता है। बांसुरी बजती रहती है, ढोल नही बजते। यह खेल गीत बच्चों द्वारा बैठकर खेले जाने वाले नृत्य की याद दिलाता है, किन्तु यह बंधते या खुलते हुए रस्सी के धागे की तरह दिखता भर है। वस्तुत: ऐसा होता नहीं। इस तरह कौतुहल पैदा करने वाले नृत्य का भी इस क्षेत्र में विशिष्ट प्रभाव मौजूद है। घेरे के बाहर के नर्तक खेलते-खेलते अंतत: रूक जाते है और बीच का घेरा यथावत बना रहता है।

शिकार नृत्य :

धुरवा जनजाति में शिकार नृत्य एक प्रसिद्ध लोकनृत्य है। इसमें कोई विशेष अंलकरण धारण नही करते। इसे पुरूषो के द्वारा ही प्रस्तुत किया जाता है। बांसुरी और ढोल के अलावा एक लोहे के पाइप जैसे आकृति का वाद्य के रूप में भी प्रयोग देखने मिलता है। इसके ऊपरी हिस्से में बने दाँते से एक पतले छुरे को सरकाया जाता है, जिससे घिसने की ध्वनि पैदा होती है। क्षेत्र के लोग इसका नाम 'किरकिचा' बताते है। (चित्र क्र. 04) इस नृत्य में आमने-सामने खड़े दो व्यक्ति अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर, एक दूसरे की हथेलियाँ पकड़ कर दरवाजे की आख्रति बनाते हैं। पीछे की तरफ का नर्तक ताली बजाता हुआ और थिरकता झुक कर आता है और दरवाजे के अंदर से सामने की ओर निकलता है। उसके वस्त्र का पिछला सिरा पकड़कर उसके पीछे के अन्य नर्तक भी एक पंक्ति में दरवाजे के अंदर से बाहर निकल जाते है। पहला नर्तक घूमकर पीछे से फिर दरवाजे के अंदर से निकलता है। उसके पीछे नर्तकों की पूरी कतार पहले की तरह निकलती है। इस बार दरवाजे से निकलने वाली कतार के अंतिम व्यक्ति को दरवाजे में पकड़ लिया जाता है और दूसरी जगह ले जाया जाता है। इस बीच दूसरे नर्तक अंदर घेरे में एक दूसरे का वस्त्र पकड़े बांसुरी ढोल व घुंघरू की धुन पर नाचते रहते हैं। इसके बाद दुबारा नर्तकों की कतार दरवाजे के नीचे से निकलती है। कतार के सामने का व्यक्ति ताली बजाता हुआ नाचता है। दरवाजे से अंदर निकलते हुए फिर एक नर्तक को कब्जे में कर लिया जाता है, और उसे दूर ले जाया जाता है। बचे हुए दल का अंतिम व्यक्ति पहले की तरह फिर पकड़ कर ले जाया जाता है। लोकनृत्य के साथ नर्तक गीत भी गाते रहते हैं। यह क्रम तब तक चलता है जब तक कतार का अंतिम नर्तक पकड़ न लिया जाये। इस नृत्य का मूल भाव जनजातियों द्वारा किए जाने वाले शिकार को सरल रूप में प्रस्तुत करने से प्रेरित होता है। अत: इसे शिकार नृत्य कहा जाता है। (चित्र क्र. 08) इस पूरे नृत्य में पहले की तरह भरपूर हँसी-मजाक शामिल होता है। अंतिम व्यक्ति को दबोचते ही सारे नर्तक खुशी से चिल्लाते, हँसने लगते हैं। नर्तक को पकड़ कर खींचा और उछाला भी जाता है। दर्शक भी इस हास-परिहास का पूरा मजा लेते हैं। एक बार नृत्य के मूड में आने पर सभी इसका पूरा आनंद लेना पसंद करते हैं। फिर इनसे बात करना या फोटो खींचने के लिए तैयार करना भी आसान नही होता। (चित्र क्र. 09)

आदिम जनजातियों के एक नृत्य में नर्तक बाहरी गोल घेरे में एक स्थान से दूसरे कदम तक कूदते हैं, फिर कूदकर वापस आते है। हवा में एक हाथ उछालते है और दूसरे हाथ से कुल्हाड़ियाँ हवा में उछालते हैं। वादक बिना थके तेज धुन बजाते हैं। इस बीच नर्तक एक दूसरे का हाथ पकड़ लेते है और दूसरे हाथ से कुल्हाड़ी ऊपर लहराते रहते हैं। मोर पंखों का गुच्छा लहराता नर्तक अंत में जुड़ जाता है। घोड़े की आकृति पांवो के बीच फँसाए विशिष्ट नर्तक सबसे सामने निकल आता है, शेष नर्तक जोड़ी के रूप में एक कतार बनाकर उसके पीछे-पीछे नृत्य करते बढ़ने लगते हैं। पगडंडियों की धूल नर्तको के पांवो को धूल धूसरित कर देती है। उनके पीछे-पीछे आठ-दस वादकों का समूह भी आ जाता है। सड़क तक पहुँचते ही सभी घेरे में व्यवस्थित होने लगते हैं। यहाँ सूरज के ढलने तक नृत्यरत पांव थिरकते रहते है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

बस्तर जिला देश के प्रमुख जनजाति क्षेत्र के रूप में माना जाता है। बस्तर क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य, खनिज संसाधन, वन तथा जनजातीय संस्कृति अद्वितीय है। इस जनजातीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा लोकनृत्य है। छत्तीसगढ़ एवं बस्तर जिले के लोकनृत्यों का वर्गीकरण एवं सामाजिक-धार्मिक दृष्टिकोण में छिटपुट अध्ययन किया गया है किन्तु शारीरिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक दृष्टि से वर्णन कम किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन से बस्तर के लोक नृत्यों के छुए-अनछुए पहलू उजागर हुए है।

अत: जनजातीय नृत्य एवं गीतों की विविधता निरंतरता कुशलता को पहचानने एवं बनाए रखने की दृष्टि से शोध कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। नृत्य के स्वरूप की फोटोग्राफी के माध्यम से भी यथासंभव उपलब्ध वर्तमान स्वरूप को संरक्षित किया गया है।

मानव के आदिम जीवन प्रसंगों को नृत्य में साकार होते देखना कला के नए अनुभव को देखने जैसा होता है। धुरवा समाज की जिजीविषा और आखेट (पारद) या शिकार भी नृत्य में साकार देखने को मिलता है। अस्त्र-शस्त्रों का नृत्य में प्रदर्शन यहाँ की विशिष्टता है। नृत्य और खेलों का संबंध कितना पुराना

है, यह इस क्षेत्र में प्रचलित मेंढकी नृत्य में देखने को मिलता है। हास्य, उमंग, उत्साह और जमीन में शरीर का बेजोड़ संतुलन इस नृत्य में जो एक बार देख लेता है, वह कभी भूल नही सकता। जनजाति नृत्य कला और अच्छे स्वास्थ्य को जोड़ने का बेहतरीन साधन प्रतीत होते हैं। कहा जा सकता है कि लोकनृत्यों सहित संस्कृति और समाज को मजबूती देने स्वयं उस वर्ग का समाज कृत संकल्पित है।

सुझाव

बस्तर जिले की जनजातियों के नृत्य का अभिलेखीकरण व वीडियोग्राफी कर संरक्षण किया जाय।ाासन के विज़ेश सहयोग से राज्य स्तर पर परंपरागत जनजातीय नृत्य, संगीत अकादमी की स्थापना किया जाय। यह परंपरागत जनजातीय नृत्य, संगीत के संरक्षण एवं विकास हेतु प्रतिबद्ध होगा।

आभार

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, क्षेत्रीय केन्द्रीय कार्यालय, भोपाल के अधिकारियों, शासकीय दंतेश्वरी महिला महाविद्यालय की प्राचार्या डॉ. रश्मि शुक्ला का मुझे अमूल्य सहयोग मिला है। साथ ही इस अध्ययन के केन्द्र बिन्दू बस्तर जिले के विभिन्न जनजातीय नर्तक, नर्तकियां एवं ग्रामिणों को विशेष आभार जिनका योगदान एवं सहभागिता इस शोध में प्राथमिक स्त्रोत के रुप में रहा ।

संदर्भ :

1. Elwin. V. The Muria and their Ghotul, 1947, Vanya prakashan Oxford University press Delhi.
2. Grigson, W. The Maria Gonds of Bastar, 1938, Vanya Prakashan Oxford University press, Delhi.
3. Kappler, A.L. Dance in Anthropological Perspective, Annual Review of Anthropology, 1, 31-49, 1978.
4. Kurath, G.P. Dance music and the daily bread, Ethnomusicology, 4 (1) 1-9, 1960.
5. Russel, R. V. & Hiralal, R. B. The Tribal and Caste central provines of India, 1916, Vol. IV, Reprint in McMillan and Co..,Ltd, London.
6. Boas, F. The Dances and Songs of the winter ceremonial, 1897, Smithsonian Institute, New York. Johnson Reprint in 1970.
7. जगदलपुरी, लाला. बस्तर इतिहास एवं संस्कृति, 1994, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, भारत।
8. Vidyarthi, L.P. & Rai ,V. The Tribal Culture of India, 1979, Concept Publishing House , New Delhi.

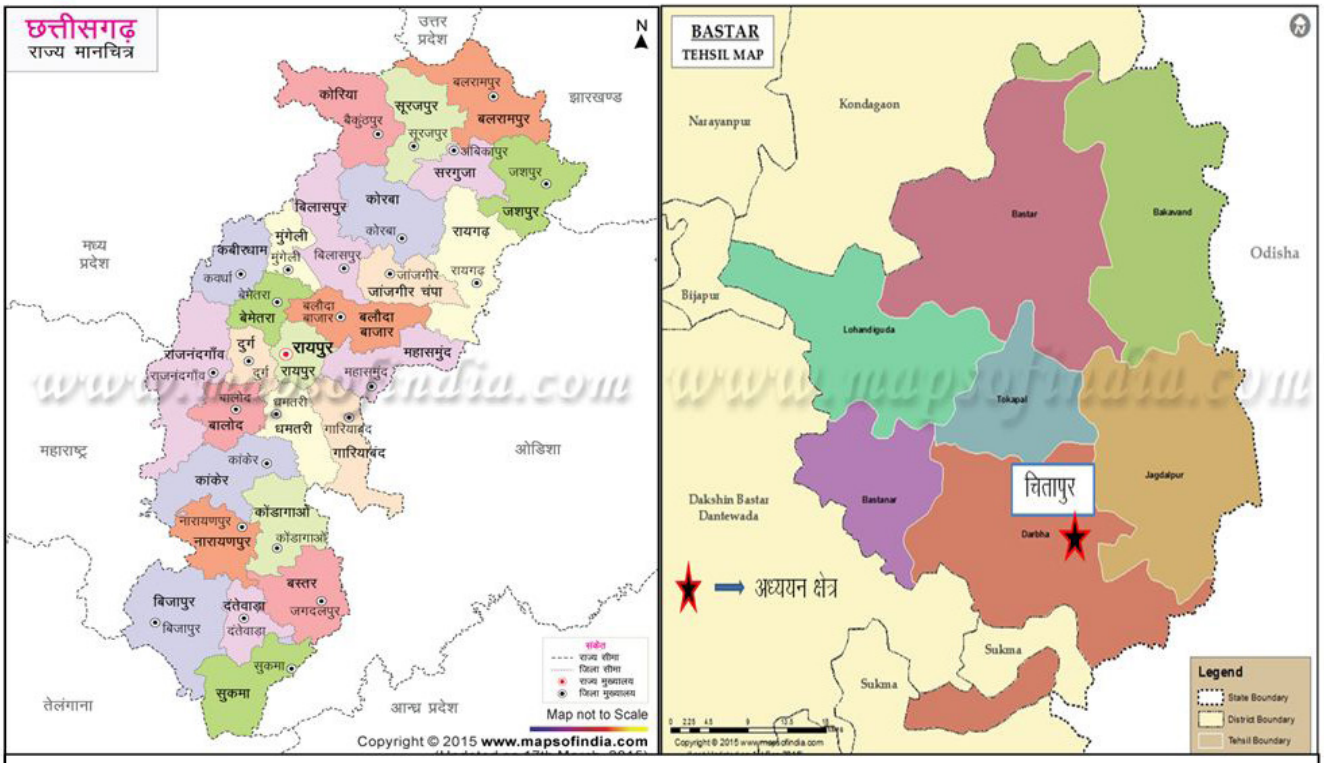

चित्र क्र. 01 अध्ययन क्षेत्र

चित्र क्र. 02 धुरवा जनजाति का विलक्षण मेंढकी नृत्य

चित्र क्र. 03 मेंढकी नृत्य करते धुरवा जनजाति के नर्तक

चित्र क्र. 04 वाघ यंत्र 'जलाजल'

चित्र क्र. 05 वाघ यंत्र "किरकिचा"

चित्र क्र. 7 धुरवा जनजाति का रोमांचक खेल नृत्य

चित्र क्र. 08 धुरवा जनजाति का रोमांचक पारद (शिकार) नृत्य

चित्र क्र. 09 पारद (शिकार) नृत्य का अद्भुत रोमांच

◆◆◆